न =न; **कर्तृत्वम्** =कर्तापन को; **न** =न; **कर्माणि** =कर्म को; **लोकस्य** =लोगों के; **सृजति** =रचता है; **प्रभुः** =देहरूपी नगर का स्वामी; **न** =नहीं; **कर्मफल** =कर्मफल के; **संयोगम्** =संयोग को; **स्वभावः** =प्राकृतिक गुण; **तु** =किन्तु; **प्रवर्तते** =कार्य करते हैं।

अनुवाद

देहरूपी नगरी का स्वामी देहबद्ध जीवात्मा कर्म अथवा कर्मफल को नहीं रचता और न ही किसी को कर्म में प्रवृत्त करता है। यह सब तो प्रकृति के गुणों का ही कार्य है।।१४।।

तात्पर्य

सातवें अध्याय के अनुसार, जीव की प्रकृति श्रीभगवान् के समान 'परा' है। यह चिच्छक्ति श्रीभगवान् की ही एक अन्य 'अपरा' नामक प्रकृति से भिन्न है। येन केन प्रकारेण परा प्रकृति का अंश जीवात्मा अनादिकाल से अपरा प्रकृति के संसर्ग में है। उसे प्राप्त नाशवान् देहरूपी निवास विविध कर्म तथा कर्मफलों का परिणाम है। ऐसी बद्धावस्था में जीव अपने को अज्ञानवश देह मान बैठता है और इस कारण अपार दुःख भोगता है। शारीरिक दुःख-क्लेश का हेतु अनादिकाल से उपार्जित यही अज्ञान है। शारीरिक क्रियाओं से विरत होते ही जीवात्मा कर्मफलबन्धन से भी मुक्त हो जाता है। जब तक वह देहरूपी पुरी में है. तब तक उसका स्वामी प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः वह उसके कर्म या कर्मफल का स्वामी अथवा ईश्वर नहीं है। वह तो बस भवसागर में डूबता हुआ जीवन के लिए भीषण संघर्ष कर रहा है। सागर की तरंगें उसका उत्क्षेप कर रही हैं, पर उन पर उसका कुछ भी नियन्त्रण नहीं है। उसके उद्धार का सर्वोत्तम साधन यह है कि कृष्णभावनामृत रूपी चिन्मय तरणी द्वारा इस भवसागर से तर जाय। इसी के द्वारा सम्पूर्ण विप्लव से उसकी रक्षा हो सकती है।

18/4

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।१५।।

न =नहीं; **आदत्ते** =ग्रहण करते; **कस्यचित्** =किसी के; **पापम्** =पाप को; **न** =नहीं; **च** =भी; **एव** =निःसन्देह; **सुकृतम्** =पुण्य को; **विभुः** =परमेश्वर; **अज्ञानेन** =अज्ञान से; **आवृतम्** =आच्छन्न है; **ज्ञानम्** =ज्ञान; **तेन** =उससे; **मुह्यन्ति** =मोहित हैं; **जन्तवः** =जीव।

अनुवाद

श्रीभगवान् किसी के भी पाप पुण्य को ग्रहण नहीं करते; जीवों के ज्ञान को अज्ञान ने ढक रखा है, इसी से वे मोह को प्राप्त हो रहे हैं।।१५।।

तात्पर्य

विभु शब्द का अर्थ परमेश्वर श्रीकृष्ण से है, जो अनन्त ज्ञान, श्री, वीर्य, यश, रूप तथा त्याग से युक्त हैं। वे सदा आत्मतृप्त हैं, पाप-पुण्य से उद्वेलित नहीं होते। किसी के लिए किसी विशिष्ट परिस्थिति का सृजन वे नहीं करते। अज्ञान से विमोहित जीवात्मा ही जीवन की विशिष्ट परिस्थितियों की कामना करता है, जिससे कर्म